

- वास्तविक गौरव आत्म विजय से प्राप्त होता है।
- प्रकृति में जीने का नाम ध्यान है, संस्कृति में जीने का नाम धर्म्यध्यान है।
- संयम बिना सम्पत्ति टिकती भी नहीं और तो और विपत्ति भी टलती नहीं।
- असहमति से डरो नहीं, वह विकास की माता है।
- मोह को मन में बढ़ने न दो, मनपर चढ़ने न दो, ये दो बातें याद रखो।
- ठगा जाना बुरा नहीं, ठगना बुरा है।
- मोह बड़ा और बड़ा हुआ, वही दुख है और वही दुख है।
- लोभ है तो क्षोभ भी है।
- अपना लोटा छानो, जगत का कुआ मत छानो।
- अपने मे सुखी नहीं वह सपने मे भी सुखी नहीं हो सकता।
- जीवन का सार धन का अर्जन नहीं, मोह का विसर्जन है।
- भा माने प्रकाश, रत माने एकाग्रता इस तरह प्रकाश में एकाग्र होना भारत है।
- दूसरों के लिये भाषण, स्वयं के लिए प्रवचन।
- शास्त्रों के पिछे दौड़नेवाला पण्डित, शास्त्र जिस के पीछे हैं वह मुनि।
- जीवन अग्नि है, दूर रहकर फूंक मारोगे तो वह प्रकाश देगी।
- बिना मनन किये पढ़ना, बिना पचाये खाने के समान है।
- सब से महान कलाकार वह है जो अपने जीवन को ही कला बनावे।
- धन से बड़ा न समझो, वह जड़ है और दुख की जड़ है।
- प्रत्येक प्राणी अपना ब्रह्मा विष्णु महेश है।

- तपस्या जीवन की सब से बड़ी कला है।
- जीवन संग्राम अकेले में सफल नहीं होता, धैर्य साथ रखो।
- विषयाभिलाषा ऊपर जाने की सीढ़ी नहीं है, वह है नीचे आने की
- शिखरपर चढ़ना चाहते हो तो, नीचे से चढ़ा प्रारंभ करो।
- सुख प्राप्त करने की इच्छा से सुख दूर भागता है।
- विकार पर दृष्टि होने से विकार दूर नहीं होते।
- लेना देना छोड़ो, पाना सीखो।
- विरोधी बंधुओं को उत्तर न देना ही सर्व श्रेष्ठ उत्तर हैं।
- युद्ध प्रिय क्यों है? क्या जाने! जब कि उसे मनुष्य एकदम प्रिय नहीं।
- लोभ को हटाना चाहते हो? उसकी माँ अज्ञानता को हटाओ।
- जो अपने ऊपर शासन नहीं करेगा वह हमेशा गुलाम रहेगा।
- स्वाधीनपन में सुख मानो या न मानो, पराधीनता में दुख है ही है।
- साधु साधना से सुखी होता है, साधनों से नहीं।
- मन और मान को मारकर ही मनुष्य मालिक बनता है
- पंचेन्द्रियों का आज का मरा कल की सजा बन जाता है
- जो सपनों में भटकता नहीं चाहता वह सुभट है।
- पापों से लड़ने की हर कीमत पर हिंमत करनी चाहिए
- अनुभव में लिखावट और काम में दिखावट छोड़ दो।
- अच्छे कार्य के लिए अधिक धन की नहीं अच्छे धन की अधिक आवश्यकता होती है।
- बदला लेने की भावना बदल डालो।
- विश्वास करो की प्यारे वचन विश्व का संगीत कर सकता है।
- दया अंतःकरण का दिव्य भास्चर स्वर है।

- आत्मा प्रशंसा करने से प्रशंसनीयता कम होती है।
- प्रेम का आत्मा त्याग है और आत्मा जिद।
- परोपरकार को कर्तव्य समझो, उपकार नहीं।
- प्रभु का देखकर प्रभुसा सुख हो ऐसा सोचना प्रमुख है।
- भ्रमर डंख मारता है किन्तु फूल सर देना नहीं छोड़ता।
- अनावश्यक सहायता सहायताका मूल्य कम करती है।
- ओऽम् त्रिलोकविजयी है और सोऽहम् आत्म विजयी
- घड़ी घड़ी घड़ी देखने मे ही घड़ी मत बिताओ ।
- प्रेम जीवन की तालिका है और आनंद की मालिका।
- सत्कार्य की दुकान पर उधारी नहीं होता, तो उसकी दिवालाभी नहीं निकलता।
- क्रेध का एक सिरा अज्ञान है और दुसरा पश्चाताप, बीच मे अधःपतन होता है।
- ज्वलं आत्मा ज्योति जहा होती है, वहां आकुलता रोती है।
- जितनी बार सांस लेते हो, उससे अधिक बार प्रभु का चिंतन करो।
- आचरण वह दर्पण है, जिस मे हर कोई अपनी शक्ल दिखाता है।
- उस खुशी से बचना श्रेयस्कर है, जो कल -हृदय को काटे।
- ज्ञान का वृक्ष छोटा हो या बड़ा, फल तो विवेक ही है।
- अध्यात्म की धूम मचाओ, लेकीन अंहकार के धूम से बचो।
- धूर्त पहले चांटता है, फिर काटता है।
- दया की भाषा बहरा सुन सकता है गूगां बोल सकता है।
- हम शान्ति की नींद सोए इस लिए झ्रग नहीं दृग चाहिए।
- आदर्श ध्यानासाठी मदत देईल मुदत देणार नाही।
- शिवरूप जीवन का सत्यरूप पहचानाही सौन्दर्य है।

- भ्रान्ति स्वप्न का साम्राज्य है, उस को तोड़ना स्वराज्य है।
- चलोतो दीपक लेकर और ठहरो तो दिपक से देखकर।
- भगवान कि मूर्ति के चर्म चक्षु से नहीं, चरम चक्षु से देखो।
- जो दूसरों को प्रकाशित करे और स्वयं अंधेरे मे रहे वहा ज्ञान बेकार है।
- सीमित प्रेम राग है, असीमित सहज प्रेम वीतराग है।
- भोगी को मौत छोड़ती नहीं, योगी को मौत छेड़ती नहीं।
- जो मन को मना ले तथा मना भी कर सके वह मुनि है।
- दूसरों को हंसाना व्यापार है, अंतर मे हंसते रहना साधना है।
- जीवन एक अग्नि है, उस से लिपट जाओ तो वह जला देगी।
- दया दयासे मिलकर श्रद्धाके फूल संग्रहीत करती है।
- दान देने मे ढोंग नहीं होना यही दान देने का सही ढंग है।
- अपात्र को दिया जानेवाला दान अंधपाषाण सदृश है।
- प्रेम का दरवाजा बंद भी हो तो व्देष की खिड़की से मज झाँको।
- लाख मन ज्ञान से एक मुट्ठी चारित्र उत्तम है।
- सभी ज्ञाता और नेता नहीं हो सकते, किन्तु सदाचारी हो सकते हैं।
- आप मृत्युरूपी अंधकार मे खो जाने पर भी किर्तीरूप चमकते रहों।
- मदद करना चाहते हो तो भाव ढोंगी गरीब की मत करो, सच्चे गरीब की करो।
- धन की कीर्ति बढ़ानी हो तो उस से सत्कार्य करो।
- जगत को चाहतो हो तो जगम विशाल, अन्यथा शून्य है।

संस्कृत

व्यादश भावना

(मानवी उदात्तता विकीर्त करुन आत्म्यात रममाण काण्यास प्रवृत्त करणा-या उन्नत भावना)

- अनित्यानुप्रेक्षा

जाताः पुष्टाः पुनर्नष्टा अति प्राणभृतां प्रथाः।
न स्थिता इति तत्कुर्याः स्थायिन्यात्मन्यदे मतिम् ॥ १॥
स्थायीती क्षणमात्रं वा ज्ञायते न हि जीवितम्।
कोटेरप्यधिकंहन्त जन्तूस हि मनीषितम् ॥२॥
अवश्यं यदि नश्यन्ति स्थित्वापि विषयश्चिरम्।
स्वयं त्याज्श्यास्तथा हि स्यान्मुक्तिः संसृतिरन्यथा ॥३॥
अनश्वरसुखावाप्तौ सत्यां नश्वरकायतः।
किंवृथैव नयस्यात्मन्क्षणं वा सफलं नयं ॥४॥

अनित्यानुप्रेक्षा

- जन्मास यावे, धष्टपुष्ट व्हावे व पुनश्च नाश पावावे अशी ही प्राणधारी संसारी जीवांची परिपाटीच आहे. स्थिर असे कोणच राहिले नाहीत, अतएव हे आत्मन् तूं अक्षय- नित्य अशा मोक्षपदाविषयी विचार (ध्यान) कर.

- खरोखर हे जीवन एक क्षणभर टिकेल किंवा नाही हे निश्चितपणे समजत नाही अर्थात् ते केव्हा नष्ट होईल याचा काहीच नियम नाही. तथापि प्राणिमात्रांच्या इच्छा - आश कोटीपेक्षा सुध्दा अधिक असतात ही किती खेदाची गोष्ट आहे?
- इंद्रियांचे विषयभोग कांही अधिक काळापर्यंत राहून देखील शेवढी खात्रीने नष्टच होतात, तेव्हा अगोदरच आपण त्यांचा स्वतः हून त्याग करणे योग्य आहे. तसे केल्यास कदाचित् कर्मबंधनापासून आपली मुक्ति तरी होईल, परंतु तसे केल्यास पुनःसंसार - परिभ्रमणच करावे लागेल.
- हे आत्मन! या क्षणभंगुर देहापासून (देहाच्या साहाय्याने) अविनाशी सुखाची अर्थात् मोक्षाची प्राप्ति होऊ शकत असताना तूं आपला एक क्षण देखील विनाकारण कां गमावतोस? प्रत्येक क्षणाचा सदुपयोग कर?

- अथाशरणानुप्रेक्षा

पयोधौ नष्टनौकस्य पत्रत्रेरिव जीव ते।
सत्यपाये शरण्यं न तत्स्वासथ्ये हि सहस्रधां ॥५॥

आयुधीयैरतिस्निग्धैर्बन्धुभिश्चाभिसंवृतः।
जन्तुः संरक्ष्यमाणोऽपि पश्यतामेव नश्यति ॥६॥
मन्त्रश्यन्त्रादयोऽप्यात्मन्स्वतन्त्र शरणं न ते।
विन्तु सत्येव पुण्ये हि नो चेत्केनाम तैः स्थिताः ॥७॥

२. अशरणानुप्रेक्षा.

- हे आत्मन! भर समुद्रामध्ये जहाजाचा नाश नाशपावल्यामुळे ज्याला कशाचाही आधार नाही अशा अशरण पक्षाप्रमाणे संकटाचे वेळी तुला कोणीही त्राता असत नाही. उलट पक्षी तुङ्गया सुस्थितीमध्ये मात्र हजारों लोक सहायार्थ गोळा होतात.
- अत्यंत प्रेमळ व सशस्त्र अशा बांधवानी चोहीकडून सर्व प्रकारे रक्षिला जाणारा देखिल प्राणी पाहतां पाहतांच विगतप्राण होतो.

- हे आत्मन्! मंत्र यंत्र- तंत्रादिक तुझे स्वंतत्रपणेद रक्षण करण्यास समर्थ नाहीत. पुण्यकर्माचा उदय असतानाच ते तुझे रक्षक होऊ शकतात. त्याच्या अभावी केवळ मंत्रादिकांनी कोण बरे सुरक्षित राहुं शकले आहेत?

३. अथ संसारानुप्रेक्षा

नटवन्नैकवंषेण भ्रमस्यात्मन्स्वकर्मतः।
 तिरश्च निरये पापाद्विविपुण्यादद्वयान्नरे॥८॥
 पश्चानना इवामोक्षादसिपंज्जर आहितः।
 क्षणेऽपि दुःसहे देहे देहिन्हन्त कथं वसे; ॥९॥
 तन्नास्ति यन्न वै भुक्तं पुदगलेषु मुहुरत्वया ॥
 तल्लेशस्वत किंतृप्त्यै बिंन्दूःपीताम्बुधेरिव ॥१०॥
 भुक्तोज्जिंतं तदुच्छिष्टं भोक्तुमेवोत्सुकायसे॥
 अभुक्तं मुक्तिसौख्य त्वमतुच्छं हन्त नेच्छसि॥
 संसृतो कर्म रागाध्याश्चक्रकं पुनः ॥१२॥
 सत्यनादौ प्रबन्धेस्मिन्कार्यकारणरूपके
 येन दुःखायसे नित्यमध्य वात्मन्विमुश्च तत् ॥१३॥

३) संसारानुप्रेक्षा.

- हे आत्मन्! तूं स्वकर्माच्या उदयामुळे नाटकातील नटाप्रमाणे अनेक वेषांनी इतरत्ततः भ्रमण करीत आहेस. पापोदयामुळे तिर्थच व नरक गकतमध्ये, पुण्यामुळे देवगतिमध्ये आणि पापपुण्य या दोहोच्या उदयामुळे मनुष्यगतीमध्ये फिरत आहेस.
- हे आत्मन! ज्या प्रमाणे एखादा सिंह पोलादी पिंज-यामध्ये अडकवून ठेवावा त्साप्रमाणे मोक्षप्राप्ति होईपर्यंत तुला हया देहरूपी पिंज-यामध्ये कर्माने अडकवून ठेवले आहे. परंतु अरेरे! क्षणभर देखील दुःसह असलेल्या हया देहामध्ये तू कसा बरे वास करून आहेस.
- आत्मन! संसारातील पुद्गल पदार्थमध्ये असा एकही पदार्थ नाही की ज्याचा तू वारंवार उपयोग घेतला नाहीस. मग आतां त्यातील केवळ एक अल्पांश काय तुझी तृप्ति करु शकेल?

कदापीही नाही. संपूर्ण समुद्र पिऊनही अतृप्तच असणा-याला पाण्याचा केवळ एक थेंब कसा बरे तृप्त करील?

- आत्मन् ! पूर्वी भोगून सोडल्यामुळे उच्छिष्ट झालेल्या पदार्थानाच पुनः भोगण्याकरीता तू मोठा उत्सुक होतोस, परंतु पूर्वी कधिहि न अनुभवलेल्या सर्वोत्कष्ट मोक्षसुखाची मात्र इच्छा करीत नाहीस किती खेदाची गोष्ट ही !
- संसारामध्ये रागद्वेषादिकांनी कर्मबंध होतो. कर्मामुळे अन्यान्य शरीराची प्राप्ति होते. शरीराबरोबर इंद्रिये उत्पन्न होतात. इंद्रियांच्या द्वारे पुनः रागादिकांची निर्मिती होते. याप्रमाणे संसारचक्राची गति आहे.
- आत्मन् ! अनादिकालापासून चालत आलेल्या हया उपर्युक्त कार्यकारणरूप परंपरेमध्ये ज्यामुळे तुला पदोपदी दुःख प्राप्त होत आहे अशा रागद्वेषादि कषयांना तूं आता तरी सोडून दे

४ अथैकत्वानुप्रेक्षा

त्यत्कोपतशशरीरादि खकर्मानुगुणं भ्रमन् ।
त्वमात्मनेक एवासि जनने मरणे पि च ॥ १४ ॥
बन्धवो हि श्मशानान्ता गह एवर्जितं धनम् ।
भस्मने गात्रमेकत्वां धर्म एव न मुश्चति ॥ १५ ॥
अज्ञांत कर्मणैवात्मन्स्वाधीने पि सुखोदये ।
नेहसे तदुपायेषु यतसे दुःखसाधने ॥ १६ ॥

४ एकत्वानुप्रेक्षा.

१४-१५) आत्मन् ! शरीर सोडून दुसरे धारण करणारा व आपल्या कर्मानुसार भ्रमण करणारा तू जन्म आणि मरण या दोन्ही वेळी एकटाच असतोच कारण-बंधुमित्रादि स्मशानापर्यंतच येतात मिळविलेले धन घराण्यामध्येच राहते शरीराची राख होऊन जाते परंतु तुझाधर्म मात्र तुला सोडून जात नाही. केवळ तोच तुझ्या बरोबर येतो.

१६) आत्मन् ! कर्मादयामुळेच अज्ञानी होऊन तूं स्वाधीन अत्मोत्कर्षपासून उत्पन्न होणा-या सुखाची व त्याच्या साधनांची इच्छा करीत नाहीस. उलट दुःखोत्पत्तीचा साधनांच्या प्राप्ति करिता मात्र अव्याहत प्रयत्न करीत आहेस.

५. अथान्यत्वानुप्रेक्षा

देहात्मको हमित्यात्मज्जातु चेतसि मा कृथा : |
कर्मतो हृपृथक्त्वं ते त्वं निचोलासिसंनिभः || १७ ||
अधुवत्वादमेध्यत्वादिचत्वाच्यान्यदद्भुकम् |
चित्त्वनित्यत्वमध्येत्वैरात्मन्नन्यो सि कायतः || १८ ||
हेये स्वयं सती बुद्धिर्यत्नेनाप्यसती शुभे |
तद्देतुकर्म तद्वन्तमांत्मानमपि साधयेत् || १९ ||

५ अन्यत्वानुप्रेक्षा

१७) आत्मन् ! मी देहस्वरूपी आहे असे मनामध्ये केळ्हाहि आणूं नकोस. कर्मामुळे तूं शरीरादिकापासून अभिन्न असा दिसत आहेस, परंतु वस्तुतः म्यानांतील तलवारीपासून तूं स्वभावाने शरीरापासून अत्यंत भिन्न आहेस.

१८) आत्मन्! हे शरीर अनित्य आहे परंतु तूं नित्य आहेस. शरीर अपवित्र आहे परंतु तूं पवित्र आहेस. तसेच शरीर अचेतन आहे व तूं चेतनवंत आहेस. या सर्वामुळे तूं शरीरापासून अत्यंत वेगळा आहेस हेच स्पष्ट होते.

१९) हेच (त्याज्य) वस्तुमध्ये बुद्धि स्वतः अपोआप प्रवृत्त होते परंतु उपादेय शुभ कृतयामध्ये अहर्निशा प्रयत्न करूनहि बुद्धि प्रवृत्त होत नाही. याला कारण आपले कर्मच आहे. तेच आपल्याला शुभ किंवा अशुभ कार्यामध्ये प्रवृत्त करते अर्थात् शुभकर्मादय असेल तर मनःप्रवृत्ति शुभकार्याकडे होत व अशुभ कर्मादयामुळे पाप-कृत्याकडे वळते.

६) अथाशुचित्वाप्रेक्षा

मेध्यानामपि वस्तुनां यत्संपर्कादमेध्यता ।

तद्गात्रमशुचीतेतिकंनात्पमलसंभवम् ॥ २० ॥
 अस्पष्टं दृष्टमङ्गं हि सामर्थ्यात्कर्मशिल्पिनः ।
 रस्यमूहे किमन्यत्स्यान्मलमांसास्थिमज्जतः ॥ २१ ॥
 दैवदन्तः स्वरूपं चेद्बहिर्दहस्य किंपरैः ।
 आस्तामनुभवेच्छेयमात्मन्को नाम पश्यति ॥ २२ ॥
 एवं पिशितपिण्डस्य क्षयिणा क्षयशंकृतः ।
 गात्रस्यात्मन्क्षयात्पूर्वं तत्फलं प्राप्य तत्यज ॥ २३ ॥
 आत्सारं वपुः कुर्यास्तथात्मस्तत्क्षये प्यभी ।
 आत्सारेक्षुहादे पि न हि शोचन्ति मानवाः ॥ २४ ॥

६) अशुचित्तानुप्रेक्षा.

- २०) ज्याच्या संपर्काने शुद्ध व पवित्र वस्तु देखील अपवित्र व अशुद्ध होतात असा हा देहपिण्ड अशुद्धच काय ? परंतु अनेक मलाचे माहेरघर आहे.
- २१) कर्मरूपी चातुर कारगिराच्या कौशल्याने शरीराचे अंतः स्वरूपदर्शन स्पष्टपणे होत नाही म्हणून बाह्यातः ते मनोहर भासते. परंतु विचार केला असतां मल-मांस हाडे मज्जा इत्यादिकांशिवाय त्यामध्ये दुसरे काय आहे?
- २२) आत्मन् ! अधिक काय सांगावे ? दैवयोगाने शरीराचे अंतरग्रुप शरीराबाहेर आल्यास त्या शरिराचा उपयोग घेण्याची भावना तर दुरच राहो परंतु त्याकडे कोणास पाहवणार सुधा नाही.
- २३) आत्मन् ! याप्रमाणे मल-मांस पिण्डस्वरूपी व नाशवंत परंतु अविनाशी मोक्षसुखाची प्राप्ति करून देण्यामध्ये सहाय्यक अशा शरीराचा नाश होण्यापूर्वीच त्याकडून इष्ट मोक्षफलाची साधना करून घेऊन नंतर त्याचा त्याग कर.
- २४) आत्मन् ! या देहापासून शक्य तितके अधिक सारसंपादन करून घे. तदनंतर त्याचा नाश झाला तरी भिण्याचे कारण नाही. ज्यापासून सार काढून घेतला आहे असे ऊसाचे निस्सार चिपाड जळाले तरी याबद्दल लोक केळ्हाहि शोक करीत बसत नाहीत.

७) अथात्रवानुप्रेक्षा

अजस्त्रमास्त्रवन्त्यात्मन्दुर्मौचः कर्मपुद्गलाः ।
 तैः पूर्णस्त्वमधोधः स्या जलपूर्णो यथा ल्पवाः ॥ २५ ॥
 तन्निदानं तवैवात्मन्योगभावो सदातनौ ।
 तो विधिं सपरिस्पन्दं परिणामं शुभाशुभम् ॥ २६ ॥
 आस्त्रवो यममुष्येति ज्ञात्वात्मन्कर्मकारणे ।
 तत्तन्निमित्तवैधुर्यादपवाह्वोर्ध्वगो भव ॥ २७ ॥

७) आस्त्रवानुप्रेक्षा

२५) आत्मन् ! अत्यंत कष्टाने दूर होणारा कर्मपुद्गलांचा निरंतर अस्त्रव होतो. आलेल्या कर्माच्या भाराने तूं पाण्याने भरलेली नांव जशी खाली खाली तब्ळाला जावी. त्याप्रमाणे खालच्या अवस्थेला अर्थात् नीच गतीला प्राप्त होतोआ.

२६) आत्मन् ! या अस्त्रवाची कारणे तुझेच अनादिकालीन योग व कषायरूप भाव आहेत. आत्म्याच्या प्रदेशामधील चंचलतेला योग व शुभाशुभ परिणामांना कषाय समज.

२७) आत्मन् ! अमुक कर्माचा आस्त्रव अमुक कारणामुळे होतो हे समजुन घे व त्या कार्मस्त्रवांची कारणे दुर करीत कर्म आणि त्याची कारणे या दोहोंचाहि नाश कर व ऊर्ध्वगामी (मोक्षगामी) हो.

c) अथ संवरानुप्रेक्षा

संरक्ष्य समितिं गुप्तिमनुप्रेक्षापरायणः ।
 तपःसंयमधर्मात्मा त्वं स्या जितपरीषह : ॥ २८ ॥
 एवं च त्वयि सत्यात्मन्कर्मस्त्रवनिरोधनात् ।
 निरन्धपोतवद् भूया निरपायो भवाम्बुधी ॥ २९ ॥
 विकथादिवियुक्तस्त्वमात्मभावनयन्वितः ।
 त्यक्तबाहस्पृहो भूया गुप्त्याद्यास्ते करस्थिताः ॥ ३० ॥
 एवमक्लेशमस्ये रिमन्नात्माधीनतया सदा ।
 श्रेयोमार्गं मति कुर्याः किंव बाहो तापकारिणी ॥ ३१ ॥
 शुष्कनिर्बन्धतो बाहो मुह्वातस्तव हृदव्यथा ।

प्रत्यक्षितैव नन्वात्मन्प्रत्यक्षनिरयोचिता ॥ ३२ ॥

c) संवरानुप्रेक्षा.

२८) आत्मन् ! समिति आणि गुप्ति यांचे संरक्षण करून अनुप्रेक्षांचे चिंतवन करण्यामध्ये तूं सदैव सावधान असावयास पाहिजे, तसेच तप, संयम इ. धर्मांना आत्मसात् करून घेऊन परिषह सहन करण्यामध्ये विजयी व्हावयास पाहिजे.

२९) आत्मन् ! याप्रमाणे वरील गोष्ट तूं अंगवळणी पाडल्यास म्हणजे नवीन कर्माचे येणे बंद होऊन संसारसमुद्रमध्ये छिद्ररहित नौका जशी समुद्रांत सुखाने विहार करते त्याप्रमाणे तुझी ही निरास्त्रव जीवननौका भवसमुद्रांत निर्विघ्नपणे प्रवास करील.

३०) आत्मन् ! विकथादि प्रमादांचा त्याग करून तूं आत्मभावनेने युक्त व बाह्य पदार्थाविषयी निरसत्क झालास तरी गुप्ति समिति इत्यादिक तुला अपोआप हस्तगत सिध्द होतील.

३१) आत्मन् ! या प्रमाणे गुप्त्यादिकांनी आत्मा स्वाधीन झाल्यामुळे मोक्षमार्ग सहज साध्य होतो म्हणून त्यामध्ये चित्तांची एकाग्रता कर दुःखप्रद अशा परपदार्थाविषयी आसक्त ठेवून काय उपयोग?

३२) आत्मन् ! बाहू पदार्थाशी निरर्थक संबंध ठेवल्यामुळे त्यातच आसक्त होणाऱ्या तुझ्या अंतःकरणाला जी दारुण व्यथा होते, ती प्रत्यक्ष नरकयातनेप्रमाणे असून ती तूं साक्षात् अनुभवलीच आहेस.

१) अथ निर्जरानुप्रेक्षा

रत्नत्रयप्रकर्षण बद्दकर्मक्षया ति ते ।

आध्यातः कथमप्यानिर्दाहां किंवावशेषयत् ॥ ३३ ॥

क्षयादनास्त्रवाच्यात्मन्कर्मणामसि केवली ।

निर्गमे चाप्रवेशेच धाराबन्धे कुतो जलम् ॥ ३४ ॥

रत्नत्रयस्य पूर्तिश्च त्वायात्मन्सुलभैव सा ।

मोहक्षीविहीनस्य परिणामो हि निर्मलः ॥ ३५ ॥

परिणामाविशुद्धयर्थ तपो बाहू विधीयते ।

न हि तण्डुलपाकः स्यात्पावकादिपरिक्षये ॥ ३६ ॥
 परिणामाविशुद्धिदश्च बाहो स्यान्निः स्पृहस्य ते ।
 निःस्पृहत्वं तु सौख्यं तब्दाहो मुहूर्ति किंमुधा ॥ ३७ ॥
 गुप्तेन्द्रियः क्षणं वात्मन्त्वन्यात्मानमात्मना ।
 भावयन्शपश्यतत्सौख्यमास्तंनिः श्रेयसादिकम् ॥ ३८ ॥
 अनन्तं सौख्यमात्मोत्थमस्तीत्यत्र हि सा प्रमा ।
 शान्तस्वान्तस्य या प्रीतिः स्वयंवेदनगोचरा ॥ ३९ ॥

३३) सम्यग्दर्शन--ज्ञान---चारित्र्य या रत्नात्रयाच्या प्रकर्षामुळे पूर्वसंचित कर्माचा क्षय होतो. चांगल्या प्रकारे भडकलेला अग्नि जाळण्यायोग्य कोणत्याहि पदार्थाला अशंतः तरी शिल्लक ठेवील काय? अर्थात् नाही. तद्वत् रत्नत्रयामुळे प्रदीप्त झालेल्या ध्यानाग्नीने पूर्वबध्द कर्माचा पूर्णपणे नाश होतो.

३४) आत्मन् ! पूर्वबध्द कर्माचा क्षय व नवीन कर्माचा अप्रवेश (संवर) यामुळे तुझी संपूर्ण घतियाकर्म नाहीशी होऊन तूं केवळी होतोस. ज्यामध्ये नवीन पाण्याची आवक नाही आणि पूर्वसंचित पाणी सारखे बाहेर जात आहे अशा तळ्यामध्ये कसे बरे राहील?

३५) आत्मन् ! यानंतर रत्नत्रयाची पूर्णता तुला सहजसाध्य आहे. मोहाच्या आवेगाने रहित असणाऱ्या जीवाचे परिणाम केळ्हाही अत्यंत निर्मलच असतात. भाव हा आहे की, नष्टमोही जीवाचे परिणाम अत्यंत विशुद्ध होत असल्यामुळे तो सुलभतेने तेराव्यांतून चवदाव्या गुणस्थानामध्ये जातो व अशा रीतीने रत्नत्रयाची पूर्ति सहजच होते.

३६) आत्मन् ! परिणामांच्या विशुद्धीसाठी अनशनादि बाहू तपश्चरण अवश्य केले पाहिजे. अग्नि, पाणी इत्यादि बाहू साधनसामुग्रीच्या अभावी तांदूळादिकांचा परिपाक होणे शक्य नाही.

३७) आत्मन् ! बाहू पदार्थविषयी निस्पृह राहिल्यानेच तुझ्या परिणामांची निर्मलता होईल आणि निःस्पृहता हेच खरे सौख्य आहे. तेव्हा परिणामांची निर्मलता होईल आणि निःस्पृहता हेच खरे सौख्य आहे. तेव्हा धन-देहादि परपदार्थमध्ये आसक्ति ठेवून तूं व्यर्थ वेडा कां होतोस ?

३८) आत्मन् ! (निस्पृहर्तेत खरोखरच किती सुख आहे याची जर तुला कल्पनाच करावयाची असेल तर) अनंत मुक्तिसुखाचा अनुभव दूरच राहो ! निदान आपल्या इंद्रियांना ताब्यात ठेवून

आत्मीवनांनी आत्म्याध्येच आत्म्याच्या दिव्य स्वरूपाचा क्षणभर तरी अनुभव घे आणि पहा ते सुख कसे असते ते !

३९) मोक्षांतील अनंत -अपार सौख्य हे आत्म्यापासूनच निर्माण होणार आहे यांत तिळ्ठुषमात्र शंका नाही, कारण शांत व निर्मल हृदयी पुरुषाच्या प्रत्यक्ष अनुभवास येणारा जो कल्पनातीत प्रेमानंद तेच त्याचे सबळ प्रमाण आहे.

१०) अथ लोकनुप्रेक्षा

प्रसारिताङ्गिणा लोकः कटिनिक्षिप्तपाणिना ।

तुल्यः पुंसोर्ध्वमध्याधोविभागस्त्रिमरुद्धृतः ॥ ४० ॥

जन्ममृत्योः पदे ह्वात्मन्नसंख्यातप्रदेशके ।

लोकेनायं प्रदेशो स्ति यस्मिन्नाभूरनन्तशः ॥४१॥

सत्यज्ञाने पुनश्चात्मनपूर्ववत्संसरिष्यसि ।

कारणे जृम्भमाणे पि न हि कार्यपरिक्षयः ॥ ४२ ॥

यतस्च तत्परस्यात्पन्युक्त्वा मुग्धोचितं सुखम् ।

चिरस्थायन्धकारो पि प्रकाशे हि विनश्यति ॥ ४२ ॥

१०) लोकानुप्रेक्षा

४०) पाय पसरलेल्या (फाकविलेल्या) व कमरेवर हात ठेवलेल्या मनुष्याप्रमाणे लोकएिर्क्षाचा आकार आहे. ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक व अधोलोक असे त्याचे तीन विभाग आहेत आणि चोहीकडून तो अनुक्रमे धनोदधि-वात, धनवात व तन्नुवात या तीन वातवलयांनी वेष्टिलेला आहे.

४१) आत्मन् ! जन्म-मरणाचे स्थान असलेल्या हया असंख्यात प्रदेशी लोकाकाशामध्ये असा एकही प्रदेश शिल्लक नाही की ज्या ठिकाणी तूं अनंतरवेळा जन्म घेऊन मरण पावला नाहीस.!

४२) आत्मन् ! आता यापुढेही तूं जर असाच अज्ञानी अविवेकी राहिलास तर पुनश्च या संसारामध्ये तुझे परिभ्रमण पूर्ववत्र चालूच राहिल कारणांचे वाढते अस्तित्व असतांना तज्जन्य कार्य बंद होणे कदापि शक्य नाही. ते बंद करावयाचे असल्यास त्याच्या कारणांचा नाश केला पाहिजे.

४३) आत्मन् ! अविवेकी लोकांना उचित असलेले वैषयिक सुखोपभोग तूं आतां सोडून देऊन अंतरंग-विशुद्धीच्या महान् तपामध्ये प्रयत्नशील हो- दिव्याच्या प्रकाशामुळे चिरकालीन अंधार देखील नाहीसा होतो, तद्वत् तपाने तूं तेजस्वी होत असल्यामुळे तुझा अज्ञान-अंधाकारही आपोआपच नष्ट होईल.

११) अथ बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा

भव्यत्वं कर्मभूजनम मानुष्यं स्वद्भवंश्यता ।
दुर्लभं ते क्रमादात्मन्समवायस्तु किंपुनः ॥ ४४ ॥
व्यर्थः स समपाया पि तवात्मन्धर्मधीर्न चेत् ।
कणिशोद्गमवैधुर्ये केदारादिगुणन किम् ॥ ४५ ॥
तदात्मन्दुर्लभं गात्रं धर्मार्थं मूढ कल्प्यताम् ।
भस्मने देहातो रत्नं मूढः कः स्यात्परा जनः ॥ ४६ ॥
देवता भविता श्वापि देवः श्वा धर्मपापतः ।
तं धर्मं दुर्लभं कुर्या धर्मो हि भुवि कामसूः ॥ ४७ ॥
भव्यस्याबाहृचित्तस्य सर्वसत्वानुकम्पिनः ।
करणत्रयशुद्धस्य तवात्मन्बोधिरेधताम् ॥ ४८ ॥

११ बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा

४४) आत्मन् ! भव्य असणे, कर्मभूमीमध्ये जन्म होणे, मनुष्यपर्याय प्राप्त होणे, सुंदर शरीर व कुलीन घराणे मिळणे यापैकी प्रत्येक गोष्ट क्रमाने एकापेक्षा एक अत्यंत दुर्लभ आहे, मग या सर्वांचा समुद्राय एकाच वेळी प्राप्त होणे किती कठीण असेल याची तूं कल्पनाच केलेली बरी !

४५) यदाकदाचीत पुण्योदयाने या उपर्युक्त गोष्टिही तुला मिळतील परंतु जर तुझी सधर्माविष्यी प्रेमबुद्धी नसेल तर त्या सर्व गोष्टी मिळणेहि व्यर्थच आहे. कारण चांगल्या कणसाची उत्पत्तीच जर होत नसेल तर जमीन, बी वैगरे सामुग्री उत्तम असूनही काय उपयोग ?

४६) अतएव हैं अविवेकी आत्मन् (आता तरी विवेकी होऊन) आपले दुर्लभ शरीर धर्माकरीता उपयोगांत आण ? (केवळ विषयोपभोगांतच त्याचा अपव्यय करूं नकोस, अन्यथा तुझ्या सारखा

मूर्ख तूंच ठरशील) - कारण केवळ भस्म (राख) मिळविण्यासाठी मूल्यवान रत्न जाळणाऱ्या मनुष्याप्रेक्षा दुसरा कोण बरे अधिक मूर्ख असूं शकेल ?

४७) आत्मन् ! धर्मामुळे कुत्रा देखील देव होतो आणि पापामुळे देवसुध्दा कुत्रा होतो. अतएव तूं त्या दुर्लभ धर्माचीच अंगीकार कर. कारण जगांत केवळ धर्म हाच एक इच्छेची पूर्ती करणारा आहे.

४८) आत्मन् ! तुला भव्यता, अंतरंग दृष्टी, सर्व जीवाशी मैत्रीभाव, अधःकरण अपूर्वकरण-अविवृतिकरण या तीन प्रकारांनी परिणामांची निर्मलता इत्यादि सर्व गोष्टी प्राप्त होऊन तुझा सम्यगदर्शन ज्ञान-चारित्र्यरूप बोधिवृक्ष वृद्धिर्गत होवो.

१२) अथ धर्मानुप्रेक्षा:

पश्यातमन्धर्ममाहात्म्यं धर्मकृत्यो न शोचति :

विश्वैर्विश्वस्यते चित्रं सहि लोकद्वये सुखी ॥ ४९ ॥

तवात्मन्नात्मनीने स्मित्तजनधर्मे तिनिर्मले ।

स्थवीयसी रुचिः स्थेयादामुक्तेर्मुक्तिदायिनी ॥ ५० ॥

१२) धर्मानुप्रेक्षा.

४९) आत्मन् ! पहा धर्माचे केवळे महात्म्य असते तें ! सध्दर्मागेने वागणाऱ्या मनुष्याला कधी शोक किंवा उद्बेग करण्याचा प्रसंग येत नाही, सर्व जनतेच्या विश्वासास तो पात्र बनतो, एवढेच नव्हे तर इहलोक व परलोकामध्ये देखील तो सुखी होतो.

५०) अतएव हे आत्मन् ! मोक्षप्राप्ति होईपर्यंत आत्मोन्नतीस अत्यंत हितकर व सर्व दृष्टिंनी अत्यंत निर्मळ-निर्दोष असलेल्या जैनधर्मामध्ये तुझी दृढ श्रद्धा (विश्वास) असू दें. अशी श्रद्धाच मुक्तिप्रद आहे. दोन्हीतही नाही.

वैदुष्येन ही वंश्यत्वं वैभवं सदुपास्यता।
सदस्यतालमुक्तेन विद्वान सर्वत्र पूज्यते ॥

विद्वत्तेमुळे कुलीनपणा ऐश्वर्य मानसन्मान व सभ्यता यांची प्राप्ती होते.

अधिक काय सांगावे ! विद्वान मनुष्य सर्वत्र पूजिला जातो.

English

- Houses are built to live in and not to look on.
- He, who has many friends, has no friends.
- Not that which producers happiness is good, but that only which is good produces happiness
- The ripest fruit falls first.
- People threw stones only at trees which have fruits on them.
- Difficulties are meant to rouse and not to discourage.
- There is a remedy for every thing but death.
- Live not to eat, but eat to live.

- Study the past if you would divine the future.
- Evil often triumphs but never conquers.
- Neither fear nor wish for your last day.
- Many talk like philosophers and live like fools.
- To read without reflecting is like eating without digesting.
- Great works are performed not by strength but by perseverance.
- Work is not man's punishment, it is his reward and his strength, his glory and pleasure.
- Heaven sends us misfortunes as a moral tonic
- Give due honour and glory to age.
- If you smile you will be welcomed every where, if you cannot, you will be left alone.
- Another rule to be successful in our life is never to think of your mistakes, what is the use of crying over spilt milk?
- Enjoy your pleasure, ignore your pains.
- A true friend is one of the greatest blessings.
- Expect no reward for doing your duty.
- Character is the crown and glory of life.
- Learn to obey and you will know how to command.
- One good mother is worth a hundred school masters.
- Believe not all you hear and report not all you believe.
- Every man of true genius has his peculiarity.

- The hills has not yet lifted ists face to heaven that perseverance will not gain the summit of at last.
- A man is valued as he makes himself valuable.
- A good cause makes a shout heart and a strong arm.
- A man without modesty is lost to all sense of honour and virtue.
- Have a place for everything and put every thing in its place.
- Serve yourself, would you be well served, is an excellent odage.
- Flattery is a sort of bad money to which our vanity gives currency.
- Those who bring sunshine to the hearts of others cannot keep it from themselves.
- Forgive theyself nothing; but others much.
- We can onlygrow as we put into practice what we know.
- Deliberate slowly byut execute promptly.
- Resist evil a the beginning, lest it overcome you in the end.
- Never convert what is not your own.
- Trust as little as possible to others for what you want.
- Nothing is so easy as to be wish after the event.
- Wings come not to those who refuse to walk.
- He serves all who dares to be true.
- From a good home, it is not far to heaven.

- Take care of the thoughts and the language will take care of itself.
- Be virtuous while you are young age shall be honoured.
- Let every dawn of morning, be to your as the beginning of life.
- Be he sunshine of the hour.
- Habits if not resisted soon, become necessity.
- A face that cannot smile, is never good.
- Learn to live as you would wish to die.
- They are slaves who fear to speak.
- We live in deeds, not in years.
- Dare to do right, fear to be wrong.
- Blessed are the humble souls that wait.
- Happiness only begins when wishes end.
- Life is opportunity for service, not as little as we dare, but as much as we can.
- No quality will get a man more friends than a sincere admiration of the qualities of others.
- Hurt not others with that which pains yourself.
- Use not perfumes but sweetness of thoughts.
- There is no sweet companion like pure charity.
- The greatest prayer is patience.
- The greatest of all adventures has been the search for truth.

- In walking along the road always step aside for people older than yourself.
- If we are not responsible for the thoughts that pass our doors, we are at least responsible for those we admit and entertain.
- Speak the truth; but without offense. Should this be too agreeable, be silent; but tell no pleasant lies.
- Do not measure everyone by your own foot.
- The deepest and obscurest mystery is not far away among the stars but in ourselves.
- Every moment a child is born with the message that goddess not despair of man.
- Have a place for everything and put everything in its place.
- There is difference between happiness and wisdom; he that thinks himself the happiest man really is so; but he that thinks himself the wisest is generally the greatest fool.
- Service is the rent we pay our room here on earth.
- When life is at tis lowest ebb, there comes the time for its spontaneous flow.
- All human good comes through the Almighty God, the giver of all goods and gifts.
- In all great man's works, it is the silent power and unseen hand of God that works.
- Relief comes when we least expect it.

- To be trusted is greater thing than to be loved.
- Screw your courage to the sticking point and you will succeed.
- Discard everything that weakens you, have nothing to do with it.
- It is a decided folly to lose a friend for a guest.
- Experience informs us that the first defence of weak minds is to recriminate.
- We were created for brother-hood, not for international strife.
- Those who rejoice and go their way happily are public benefactors.
- A courageous foe is better than a cowardly friend.
- Neither covetous persons nor the grave can inherit anything.
- He will never be a happy man whom it torments to see a happier.
- Difficulties are sent to be overcome.
- Do not speak of the benefits you have conferred.
- Gratitude is an indication of a noble nature.
- The easiest thing of all is to deceive one's self=
- Be not the slave of show or circumstances.
- Don't worry about the faults of your neighbour, rather look at your own.

- Be proud of your work, but do not be vain.
- They serve best who do not flatter.
- A good conscience makes for great happiness.
- Face your fears and they will tend to vanish.
- The noblest charity is to prevent a person from accepting charity.
- A simple conversation across the table with a wise man is better than ten years's study of books.
- Tolerance is good, but to tolerate injustice, to tolerate dishonesty, to tolerate untruth is certainly not right.

THE END

